भारत में भूमि सुधार (भाग- 2)

स्वतंत्रता पूर्व

- ब्रिटिश राज में किसानों के पास उन ज़मीनों का स्वामित्व नहीं था जिन पर वे खेती करते थे। ज़मीन का मालिकाना हक ज़मींदारों, जागीरदारों आदि के पास होता था।
- इसकी वजह से स्वतंत्र भारत में सरकार के समक्ष कई गंभीर मुद्दे उत्पन्न हुए जो चुनौती बनकर खड़े हो गए।
    - भूमि पर मध्यस्थों का प्रभाव और कुछ लोगों का स्वामित्व था, जिनको स्वयं कृषि कार्य करने में कोई रुचि नहीं थी।
        - भूमि को पट्टे पर देना एक सामान्य चलन था।
    - काश्तकारों का शोषण लगभग प्रत्येक जगह किया जाता था जिसमें काश्तकारी अनुबंध की ज़ब्ती एक सामान्य घटना थी।
    - भूमि रिकॉर्डों की दशा खराब थी, फलस्वरूप मुकदमेबाज़ी में वृद्धि हुई।
    - वाणिज्यिक खेती के लिये भूमि का बहुत छोटे भागों में विभाजन करना कृषि क्षेत्र की एक अन्य समस्या थी ।
        - इसके परिणामस्वरूप सीमा और भूमि विवादों के रूप में भूमि, पूंजी तथा श्रम का अकुशल उपयोग हुआ।

स्वतंत्रता पश्चात् की स्थिति

- जे. सी. कुमारप्पन (J. C. Kumarappan) की अध्यक्षता में भूमि संबंधी समस्याओं से निपटने के लिये एक समिति नियुक्त की गई। कुमारप्पन समिति द्वारा कृषि में व्यापक सुधार हेतु उपायों की सिफारिश की गई।
- स्वतंत्र भारत में भूमि सुधारों के चार घटक थे:
    - मध्यस्थों का उन्मूलन।
    - काश्तकारी सुधार।
    - भूमि स्वामित्व की सीमा तय करना।
    - भूमि स्वामित्व की चकबंदी।
- इन सुधारों की व्यापक स्तर पर स्वीकृति के लिये राजनीतिक इच्छाशक्ति की ज़रूरत थी जिस कारण से इन्हें चरणों में स्वीकार करना पड़ा।

मध्यस्थों का उन्मूलन

- **ज़मींदारी प्रणाली का उन्मूलन:** प्रथम महत्त्वपूर्ण कानून ज़मींदारी प्रणाली का उन्मूलन था जिसके द्वारा कृषकों और राज्य के मध्य मौजूद मध्यस्थों को हटा दिया गया।
- यह सुधार अन्य सुधारों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी था जो अधिकांश क्षेत्रों में ज़मींदारों के अधिकारों को समाप्त करने और उनकी आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति को कमज़ोर करने में सफल रहा।
    - यह सुधार वास्तविक भू-स्वामियों अर्थात् काश्तकारों की स्थिति को मज़बूत करने के लिये किया गया था।
- **लाभ:** मध्यस्थों के उन्मूलन से लगभग 2 करोड़ काश्तकारों को वह भूमि प्राप्त हो गई जिस पर वे कृषि करते थे।
    - मध्यस्थों के उन्मूलन के कारण एक शोषक वर्ग का अंत हो गया और भूमिहीन किसानों को भूमि वितरण के लिये अधिक-से-अधिक भूमि को सरकारी कब्ज़े में लिया गया।
    - देश में बंजर भूमि और मध्यस्थों के निजी वनों का काफी क्षेत्र खेती योग्य था।
    - मध्यस्थों के कानूनी उन्मूलन से किसान सीधे सरकार के संपर्क में आ गए।
- **हानियाँ:** हालाँकि ज़मींदारी उन्मूलन से ज़मींदारवाद, काश्तकारी या शेयरक्रॉपिंग प्रणाली (Sharecropping Systems) पूरी तरह से खत्म नहीं हो पाई तथा कई क्षेत्रों में यह व्यवस्था जारी रही। इसकी वजह से बहुस्तरीय कृषि संरचना पर मौजूद ज़मींदार केवल शीर्ष स्तर से हट गए।
    - इसके कारण बड़े पैमाने पर भूमि निष्कासन हुआ जिसके कारण कई सामाजिक-आर्थिक और प्रशासनिक समस्याएँ उत्पन्न हुईं।
- **मुद्दे:** जम्मू-कश्मीर और पश्चिम बंगाल ने उन्मूलन को वैध करार दिया था तथा अन्य राज्यों में मध्यस्थों को बिना किसी सीमा के व्यक्तिगत कृषि भूमि पर स्वामित्व बनाए रखने की अनुमति प्राप्त थी।
    - साथ ही कुछ राज्यों में यह कानून कृषि जोतों की जगह केवल सैराती महालों (Sairati Mahal) जैसे काश्तकार हितों पर लागू हुआ।
        - अतः ज़मींदारी प्रणाली के औपचारिक उन्मूलन के बाद भी कई बड़े मध्यस्थ मौजूद रहे।

काश्तकारी में सुधार

- ज़मींदारी उन्मूलन अधिनियम पारित करने के पश्चात् अगली बड़ी समस्या काश्तकारी के विनियमन की थी।
  - स्वतंत्रता-पूर्व अवधि के दौरान काश्तकारों द्वारा भुगतान किया जाने वाला भूमिकर अत्यधिक (पूरे भारत में 35% और 75% सकल उपज के बीच) था।
  - भूमिकर को विनियमित करने के लिये पेश किये गए काश्तकारी सुधार काश्तकारों को कार्यकाल की सुरक्षा एवं स्वामित्व प्रदान करते हैं।
  - कृषकों द्वारा देय किराए को विनियमित करने के लिये (1950 के दशक की शुरुआत में) पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर और आंध्र प्रदेश के कुछ हिस्सों में सकल उत्पादन स्तर का 20% - 25% तक भूमिकर निर्धारित किया गया था।
- इस सुधार ने या तो काश्तकारी को पूरी तरह से अवैध करार दिया या काश्तकारों को कुछ सुरक्षा प्रदान करने के लिये भूमिकर के विनियमन करने का प्रयास किया।
- पश्चिम बंगाल और केरल में कृषि संरचना का मौलिक पुनर्गठन हुआ, जिसने काश्तकारों को भूमि का अधिकार प्रदान किया।
- **मुद्दे:** अधिकांश राज्यों में इन कानूनों को कभी भी बहुत प्रभावी ढंग से लागू नहीं किया गया। योजना के दस्तावेज़ों पर बार-बार बल देने के बावजूद कुछ राज्य काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार प्रदान करने के लिये कानून पारित नहीं कर सके।
  - भारत के कुछ राज्यों ने काश्तकारी को पूरी तरह से समाप्त कर दिया, जबकि अन्य राज्यों ने मान्यता प्राप्त काश्तकारों और अंशधारकों को स्पष्ट रूप से अधिकार प्रदान किया है।
  - यद्यपि सुधारों ने काश्तकारी क्षेत्र में कमी की, परंतु बहुत कम काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हुआ।

भूमि स्वामित्व की सीमा

- भूमि सुधार कानूनों की तीसरी प्रमुख श्रेणी **लैंड सीलिंग अधिनियम (Land Ceiling Acts)** की थी। भूमि स्वामित्व पर सीमा को कानूनी रूप से भूमि के उस अधिकतम आकार के रूप में संदर्भित किया जाता है जिससे अधिक भूमि पर कोई भी कृषक अथवा कृषक परिवार स्वामित्व नहीं रख सकता। इस तरह की सीमा तय करने का उद्देश्य कुछ ही लोगों के हाथों में निहित भू-स्वामित्व में कमी करना था।
- वर्ष 1942 में **कुमारप्पन समिति** ने भूमि के अधिकतम आकार (ज़मींदारों के पास) को लेकर सिफारिश की। यह एक परिवार की आजीविका के लिये आवश्यक सीमा से तीन गुनी अधिक थी।
- वर्ष 1961-62 तक सभी राज्य सरकारों ने लैंड सीलिंग अधिनियम पारित कर दिये थे लेकिन अलग-अलग राज्यों में यह सीमा अलग-अलग थी। राज्यों में एकरूपता लाने के लिये वर्ष 1971 में एक नई भूमि सीमा नीति बनाई गई।
  - वर्ष 1972 में विभिन्न क्षेत्रों में भूमि के प्रकार, उनकी उत्पादकता और ऐसे अन्य कारकों के आधार पर अलग-अलग सीमा के साथ राष्ट्रीय दिशा-निर्देश जारी किये गए थे।
  - इन दिशा-निर्देश में सबसे अच्छी भूमि की सीमा 10-18 एकड़, द्वितीय श्रेणी के भूमि की सीमा 18-27 एकड़ और शेष भूमि सीमा 27-54 एकड़ थी, लेकिन पहाड़ी एवं रेगिस्तानी इलाकों में भूमि की सीमा इनसे थोड़ी अधिक थी।
- इन सुधारों की मदद से राज्य को प्रत्येक परिवार के स्वामित्व वाली अधिशेष भूमि (तय सीमा से अधिक) की पहचान और उसका अधिग्रहण करना था तथा इसे भूमिहीन परिवारों एवं अन्य अनुसूचित श्रेणियों जैसे-एससी व एसटी के भूमिहीन परिवारों को पुनर्वितरित करना था।
- **मुद्दे:** अधिकांश राज्यों में ये अधिनियम शक्तिविहीन साबित हुए। इसमें ऐसी कई खामियाँ एवं रणनीतिक कमियाँ थीं जिनसे भूस्वामी अपनी भूमि को अधिग्रहण से बचा लेते थे।
  - बहुत बड़ी कुछ भू-संपदाओं को विभाजित कर दिया गया, लेकिन अधिकांश भूस्वामियों ने तथाकथित बेनामी हस्तांतरण द्वारा अपनी भूमि नौकरों, रिश्तेदारों आदि के नाम करा दी। इससे भूस्वामी भूमि के विभाजन के बाद भी उस पर अपना नियंत्रण बनाए हुए थे।
  - लैंड सीलिंग एक्ट के प्रावधानों से बचने के लिये कुछ जगहों पर कुछ अमीर किसानों ने अपनी पत्नियों (वास्तव में उनके साथ रहना जारी रखा) को तलाक दे दिया क्योंकि इस अधिनियम में तलाकशुदा औरतों के लिये भूमि में हिस्सेदारी की अनुमति थी, जबकि शादीशुदा औरतों के लिये नहीं थी।

भूमि स्वामित्व की चकबंदी

- **चकबंदी** का अर्थ खंडित भूमियों का एक भूखंड के रूप में पुनर्गठन/पुनर्वितरण करने से है।
  - गैर-कृषि क्षेत्रों में बढ़ती जनसंख्या और रोज़गार के कम अवसरों ने भूमि पर दबाव बढ़ा दिया जिसके कारण भूमि के विखंडन की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है।
  - इससे भूखंडों की सिंचाई और देखरेख करना बहुत मुश्किल हो गया।
- इसी कारण से भूमि की चकबंदी शुरू की गई।
  - इस अधिनियम के तहत गाँव के कृषकों की भूमि के छोटे भूखंडों को एक बड़े टुकड़े (भूमि की खरीद या विनिमय द्वारा) में मिला दिया जाता था।
- भूमि चकबंदी के लिये तमिलनाडु, केरल, मणिपुर, नगालैंड, त्रिपुरा और आंध्र प्रदेश के कुछ हिस्सों को छोड़कर लगभग सभी राज्यों ने कानून बनाए।
- भूमि की चकबंदी करवाना पंजाब और हरियाणा राज्य में अनिवार्य थी, जबकि अन्य राज्यों में चकबंदी भू-स्वामियों की सहमति से स्वैच्छिक आधार पर की गई।
- **लाभ:** इससे भूमिजोत का कभी खत्म न होने वाला विखंडन रोका गया।
  - इससे किसान अलग-अलग स्थानों की बजाय भूमि की एक ही जगह पर सिंचाई तथा कृषि करने लगे जिससे समय एवं श्रम की बचत हुई।
  - इस भू-सुधार से कृषि की लागत और किसानों के बीच मुकदमेबाज़ी में कमी आई।
- **परिणाम:** पर्याप्त राजनीतिक और प्रशासनिक समर्थन की कमी के कारण पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश (जहाँ चकबंदी का कार्य पूर्ण हुआ था) को छोड़कर चकबंदी के संदर्भ में हुई प्रगति बहुत संतोषजनक नहीं थी।
  - हालाँकि इन राज्यों में जनसंख्या के दबाव के चलते भूमि के विखंडन के कारण पुन: चकबंदी किये जाने की आवश्यकता थी।
- **पुन: चकबंदी की आवश्यकता:** वर्ष 1970-71 में औसत भू-स्वामित्व का आकार 2.28 हेक्टेयर था जो वर्ष 2015-16 में घटकर 1.08 हेक्टेयर रह गया।
- नगालैंड में औसत कृषि क्षेत्र आकार सबसे अधिक है वहीं पंजाब एवं हरियाणा इस सूची में क्रमशः द्वितीय एवं तृतीय स्थान पर हैं।

- भू-स्वामित्व का आकार बिहार, पश्चिम बंगाल और केरल जैसे घनी आबादी वाले राज्यों में बहुत कम है।
- पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपखंडों के विभाजन ने इन्हें और भी छोटा कर दिया है।

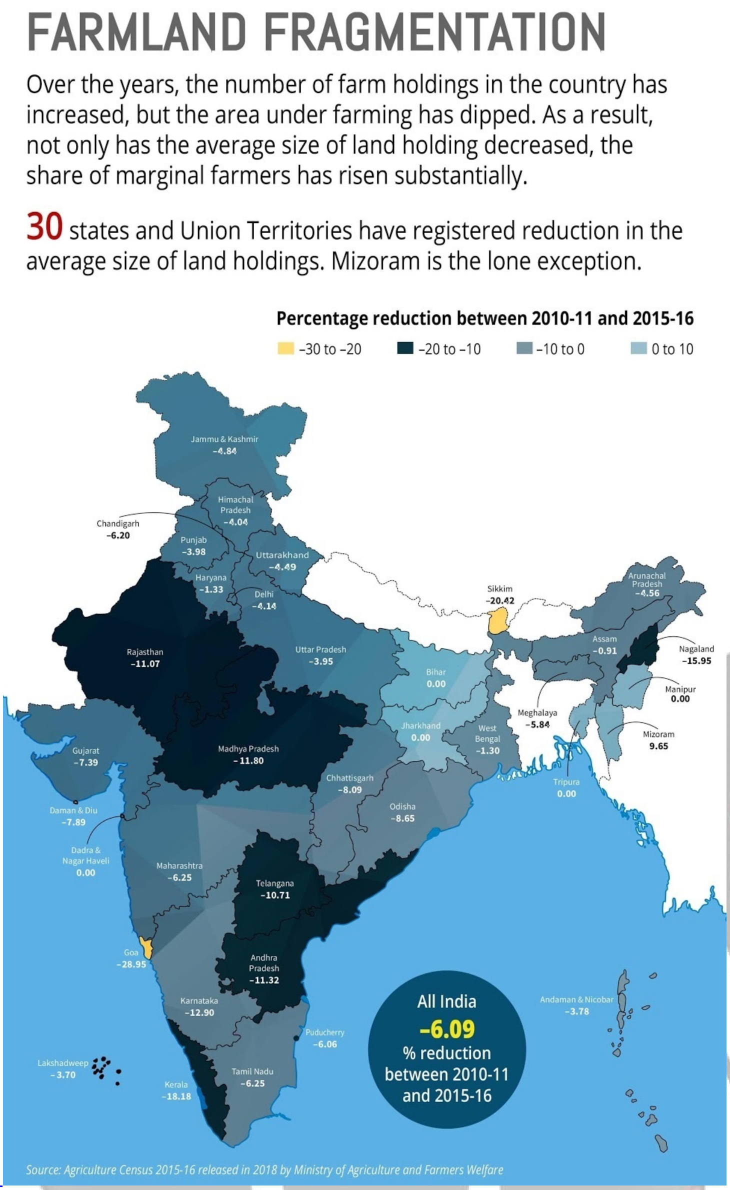

//

भूदान एवं ग्रामदान आंदोलन

- महात्मा गांधी के शिष्य **विनोबा भावे** ने **तेलंगाना के पोचमपल्ली** में भूमिहीन हरिजनों की समस्याओं पर ध्यान दिया।
- उन्होंने भारत के भूमि सुधार कार्यक्रम में "अहिंसात्मक क्रांति" लाने के प्रयास के तहत आंदोलनों का नेतृत्व किया।
    - इन आंदोलनों के तहत भू-स्वामी संपन्न वर्गों से आग्रह किया जाता था कि वे **स्वेच्छा से** अपनी भूमि के एक हिस्से को भूमिहीनों को सौंप दें, जिसको भूदान आंदोलन के नाम से जाना जाता है।
        - इसकी शुरुआत **वर्ष 1951** में हुई थी।
- विनोबा भावे द्वारा की गई अपील से कुछ भू-स्वामी वर्गों ने अपनी कुछ भूमि का स्वैच्छिक दान किया।
- केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा इस कार्य में विनोबा भावे को आवश्यक सहायता प्रदान की जा रही थी।
- भूदान आंदोलन ने **वर्ष 1952** में शुरू हुए **ग्रामदान आंदोलन** को भी दिशा दी।
    - ग्रामदान आंदोलन का उद्देश्य प्रत्येक गाँव में भूमि स्वामियों और पट्टाधारकों को उनके भूमि अधिकारों को त्यागने के लिये राजी करना था। समस्त भूमि के समतावादी पुनर्वितरण तथा संयुक्त खेती हेतु ग्राम संघ की संपत्ति बना दिया जाता था।
        - एक गाँव के 75% निवासियों (जिनके पास 51% भूमि थी) की ग्रामदान के लिये लिखित स्वीकृति मिलने के बाद ही उस गाँव को ग्रामदान के रूप में घोषित किया जाता था।
    - ग्रामदान के तहत आने वाला पहला **गाँव मैग्रोथ**, हरपुर (उत्तर प्रदेश) था।

आंदोलन की सफलता:

- यह स्वतंत्रता के बाद का पहला आंदोलन था जिसने एक आंदोलन (सरकारी कानून से नहीं) के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने का प्रयास किया।
- इस आंदोलन ने एक नैतिक माहौल का निर्माण किया जिससे बड़े ज़मींदारों पर दबाव पड़ा।
- इसने किसानों और भूमिहीनों के बीच राजनीतिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया तथा किसानों को संगठित करने हेतु राजनीतिक प्रचार के लिये एक ज़मीन तैयार की।

कमियाँ:

- इस आंदोलन के तहत दान की गई अधिकांश भूमि कम उपजाऊ अथवा मुकदमेबाज़ी वाली होती थी और इस प्रकार प्राप्त भूमि की बहुत कम मात्रा का वितरण ही भूमिहीनों के मध्य किया जा सका।
- ग्रामदान आंदोलन उन गाँवों (मुख्यतः आदिवासी क्षेत्रों) में शुरू किया गया था जहाँ वर्ग विभेदीकरण की स्थिति नहीं थी और भू-स्वामित्व को लेकर बहुत कम अंतर था।
- यह आंदोलन उन क्षेत्रों में सफल नहीं हो सका जहाँ भू-स्वामित्व में अधिक असमानता थी।
- आंदोलन अपनी क्रांतिकारी क्षमता का एहसास करने में विफल रहा।

परिणाम:

- इन आंदोलनों को व्यापक सफलता मिली थी।
    - वर्ष 1969 के आस-पास आंदोलन अपने चरम पर था।
    - अनेक राज्य सरकारों ने ग्रामदान और भूदान के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कानून बनाए।
    - वर्ष 1969 के बाद ग्रामदान और भूदान ने स्वैच्छिक आंदोलन की जगह सरकारी सहायता प्राप्त कार्यक्रम में स्थानांतरित होने के कारण अपना महत्त्व खो दिया।
    - आंदोलन से वर्ष 1967 में विनोबा भावे के निकल के बाद जनाधार में कमी आई।

आगे की राह

- नीति आयोग और कुछ उद्योगों द्वारा भूमि पर निवेश को बढ़ावा देने और ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक आय तथा रोज़गार का सृजन करने के लिये बड़े पैमाने पर भूमि को पट्टे (Land Leasing) पर लिये जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया।
- इस उद्देश्य को चकबंदी द्वारा सुगम बनाया जा सकता था।
- भूमि रिकॉर्ड डिजिटलीकरण जैसे- आधुनिक भूमि सुधार उपायों को जल्द से जल्द अपनाया जाना चाहिये।

निष्कर्ष

- भूमि सुधार उपायों के कार्यान्वयन की गति धीमी रही है। फिर भी काफी हद तक सामाजिक न्याय का उद्देश्य हासिल किया गया है।
- ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था में भूमि सुधारों की बड़ी भूमिका है। गाँवों में गरीबी खत्म करने के लिये नए एवं परिवर्तनकारी भूमि सुधार उपायों को नई शक्ति के साथ अपनाया जाना चाहिये।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/land-reforms-in-india-part-2